# भगवान् बुद्ध
# या
# कार्ल मार्क्स

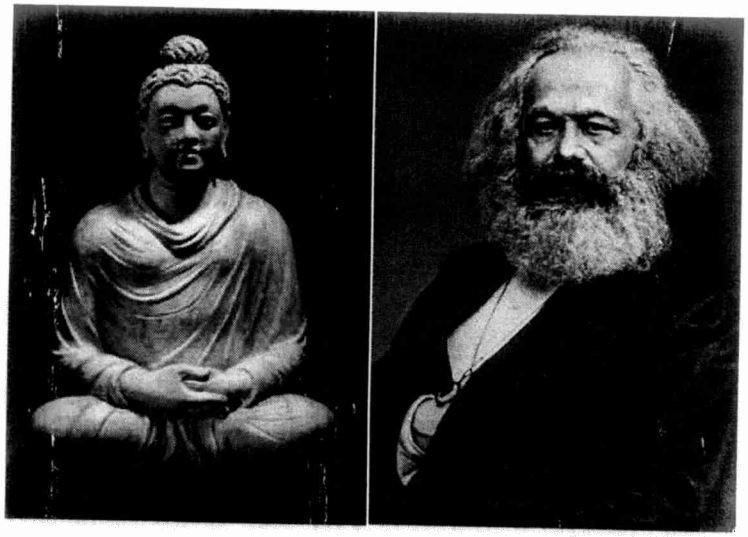

लेखक डॉ॰बी॰ आर॰ अम्बेडकर

# बुद्ध या कार्ल मार्क्स

कार्ल मार्क्स तथा बुद्ध में तुलना करने के कार्य को कुछ लोगों द्वारा एक मजाक माना जाए, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। मार्क्स तथा बुद्ध के बीच 2381 वर्ष का अन्तर है। बुद्ध का जन्म ई. पू. 563 में हुआ था और कार्ल मार्क्स का जन्म सन् 1818 में हुआ। कार्ल मार्क्स को एक नई विचारधारा व नए मत-राज्य शासन का व एक नई आर्थिक व्यवस्था का निर्माता माना जाता है। इसके विपरीत बुद्ध को एक ऐसे धर्म के संस्थापक के अलावा और कुछ नहीं माना जाता, जिसका राजनीति या अर्थशास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन दोनों के बीच समय का बहुत बड़ा अन्तराल है। उनके विचार-क्षेत्र भी अलग-अलग हैं। अतः इस शीर्षक का अजीब-सा प्रतीत होना अवश्यम्भावी है। मार्क्सवादी इस पर आसानी से हँस सकते हैं, और मार्क्स तथा बुद्ध को एक समान स्तर पर लाने का मजाक व हँसी उड़ा सकते हैं। मार्क्स बहुत आधुनिक और बुद्ध बहुत पुरातन हैं। मार्क्सवादी यह कह सकते हैं कि उनके गुण की तुलना में बुद्ध केवल आदिम व अपरिष्कृत ही ठहर सकते हैं। फिर, ऐसे दो व्यक्तियों के बीच क्या समानता या तुलना हो सकती है? एक मार्क्सवादी बुद्ध से क्या सीख सकता है? बुद्ध एक मार्क्सवादी को क्या शिक्षा दे सकते हैं? फिर भी इन दोनों के बीच तुलना आकर्षक तथा शिक्षाप्रद है। इन दोनों के अध्ययन तथा इन दोनों की विचारधारा व सिद्धान्त में मेरी भी रुचि है। इस कारण इन दोनों के बीच तुलना करने का विचार मेरे मन में आया। यदि मार्क्सवादी अपने पूर्वाग्रहों को पीछे रखकर बुद्ध का अध्ययन करें और उन बातों को समझें, जो उन्होंने कही हैं और जिनके लिए उन्होंने संघर्ष किया, तो मुझे यकीन है कि उनका दृष्टिकोण बदल जाएगा। वास्तव में उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि बुद्ध की हँसी व मजाक उड़ाने का निश्चय करने के बाद वे उनकी प्रार्थना करेंगे। परन्तु इतना कहा जा सकता है कि उनको यह महसूस होगा कि बुद्ध की शिक्षाओं व उपदेशों में कुछ ऐसी बात हैं, जो ध्यान में रखने के योग्य और बहुत लाभप्रद हैं।

## बुद्ध का सिद्धान्त

बुद्ध का नाम सामान्यतः अहिंसा के सिद्धान्त के साथ जोड़ा जाता है। अहिंसा को ही उनकी शिक्षाओं व उपदेशों का समस्त सार माना जाता है। उसे ही उनका प्रारम्भ व अन्त समझा जाता है। बहुत कम व्यक्ति इस बात को जानते हैं कि बुद्ध ने जो उपदेश दिए, वे बहुत ही व्यापक हैं, अहिंसा से बहुत बढ़कर हैं। अतएव यह आवश्यक है कि उनके सिद्धान्तों को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया जाए। मैंने त्रिपिटिक का अध्ययन किया। उस अध्ययन से मैंने जो समझा मैं आगे उसका उल्लेख कर रहा हूँ–

1. मुक्त समाज के लिए धर्म आवश्यक है।
2. प्रत्येक धर्म अंगीकार करने योग्य नहीं होता।
3. धर्म का सम्बन्ध जीवन के तथ्यों व वास्तविकताओं से होना चाहिए। ईश्वर या परमात्मा या स्वर्ग या पृथ्वी के सम्बन्ध में सिद्धान्तों तथा अनुमान मात्र की निराधार कल्पना से नहीं होना चाहिए।
4. ईश्वर को धर्म का केंद्र बनाना अनुचित है।
5. आत्मा की मुक्ति या मोक्ष को धर्म का केन्द्र बनाना अनुचित है।
6. पशुबलि को धर्म का केन्द्र बनाना अनुचित है।
7. वास्तविक धर्म का वास मनुष्य के हृदय में होता है, शास्त्रों में नहीं।
8. धर्म के केन्द्र मनुष्य तथा नैतिकता होने चाहिए। यदि नहीं, तो धर्म एक क्रूर अंधविश्वास है।
9. नैतिकता के लिए जीवन का आदर्श होना ही पर्याप्त नहीं है। चूँकि ईश्वर नहीं है, अतः इसे जीवन का नियम या कानून होना चाहिए।
10. धर्म का कार्य विश्व का पुनर्निर्माण करना तथा उसे प्रसन्न रखना है, उसकी उत्पत्ति या उसके अन्त की व्याख्या करना नहीं।
11. संसार में दुःख स्वार्थों के टकराव के कारण होता है, और इसके समाधान का एकमात्र तरीका अष्टांग मार्ग का अनुसरण करना है।
12. सम्पत्ति के निजी स्वामित्व से अधिकार व शक्ति एक वर्ग के हाथ में आ जाती है और दूसरे वर्ग को दुःख मिलता है।
13. समाज के हित के लिए यह आवश्यक है कि इस दुःख का निदान इसके कारण का निरोध करके किया जाए।
14. सभी मानव प्राणी समान हैं।
15. मनुष्य का मापदंड उसका गुण होता है, जन्म नहीं।



16. जो चीज महत्वपूर्ण है, वह है उच्च आदर्श, न कि उच्च कुल में जन्म।
17. सबके प्रति मैत्री का साहचर्य व भाईचारे का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिए।
18. प्रत्येक व्यक्ति को विद्या प्राप्त करने का अधिकार है। मनुष्य को जीवित रहने के लिए ज्ञान-विद्या की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी भोजन की।
19. अच्छा आचरण-विहीन ज्ञान खतरनाक होता है।
20. कोई भी चीज भ्रमातीत व अचूक नहीं होती। कोई भी चीज सर्वदा बाध्यकारी नहीं होती। प्रत्येक वस्तु छानबीन तथा परीक्षा के अधीन होती है।
21. कोई वस्तु सुनिश्चित तथा अन्तिम नहीं होती।
22. प्रत्येक वस्तु कारण-कार्य सम्बन्ध के नियम के अधीन होती है।
23. कोई भी वस्तु स्थायी या सनातन नहीं है। प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील होती है। सदैव वस्तुओं में होने का क्रम चलता रहता है।
24. युद्ध यदि सत्य तथा न्याय के लिए न हो, तो वह अनुचित है।
25. पराजित के प्रति विजेता के कर्त्तव्य होते हैं।

बुद्ध के संक्षिप्त रूप में यही सिद्धान्त हैं। यह कितना प्राचीन, परन्तु कितना नवीन है। उनके उपदेश कितने व्यापक तथा कितने गंभीर है।

## कार्ल मार्क्स का मौलिक सिद्धान्त

आइए, अब हम कार्ल मार्क्स द्वारा मौलिक रूप से प्रस्तुत मूल सिद्धान्त का विवेचन करें। इसमें सन्देह नहीं कि मार्क्स आधुनिक समाजवाद या साम्यवाद का जनक है। परन्तु उसकी रुचि केवल समाजवाद के सिद्धान्त को प्रतिपादित व प्रस्तुत करने मात्र में ही नहीं थी। यह कार्य तो उससे बहुत पहले ही अन्य लोगों द्वारा कर दिया गया था। मार्क्स की अधिक रुचि इस बात को सिद्ध करने में थी कि उसका समाजवाद वैज्ञानिक है। उसका जिहाद पूंजीपतियों के विरुद्ध जितना था, उतना ही उन लोगों के विरुद्ध भी था, जिन्हें वह स्वप्नदर्शी या अव्यावहारिक समाजवादी कहता था। वह उन दोनों को ही पसन्द नहीं करता था। इस बात पर इसलिए ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि मार्क्स अपने समाजवाद के वैज्ञानिक स्वरूप को सबसे अधिक महत्व देता था। जिन सिद्धान्तों को मार्क्स ने प्रस्तुत किया, उनका उद्देश्य कुछ और नहीं, केवल उसके

इस दावे व विचारधारा को स्थापित करना था कि उसका समाजवाद वैज्ञानिक प्रकार का था, स्वप्नदर्शी व अव्यावहारिक नहीं।

वैज्ञानिक समाजवाद से कार्ल मार्क्स का यह अभिप्राय था कि उसका समाजवाद अपरिहार्य तथा अनिवार्य प्रकार का था और समाज उसकी ओर अग्रसर हो रहा है तथा उसकी गति को आगे बढ़ने से कोई चीज़ नहीं रोक सकती। मार्क्स के इस दावे व विचारधारा को सिद्ध करना है, जिसके लिए उसने मुख्य रूप से परिश्रम किया।

मार्क्स की अवधारणा निम्नलिखित प्रमेयों पर आधारित है—

1. दर्शन का उद्देश्य विश्व का पुनर्निर्माण करना है, ब्रह्मांड की उत्पत्ति की व्याख्या करना नहीं।
2. जो शक्तियाँ इतिहास की दिशा को निश्चित करती हैं, वे मुख्यतः आर्थिक होती हैं।
3. समाज दो वर्गों में विभक्त हैं—मालिक तथा मजदूर।
4. इन दोनों वर्गों के बीच हमेशा संघर्ष चलता रहता है।
5. मजदूरों का मालिकों द्वारा शोषण किया जाता है। मालिक उस अतिरिक्त मूल्य का दुरुपयोग करते हैं, जो उन्हें अपने मजदूरों के परिश्रम के परिणामस्वरूप मिलता है।
6. उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण, अर्थात् व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन करके शोषण को समाप्त किया जा सकता है।
7. इस शोषण के फलस्वरूप श्रमिक और अधिकाधिक निर्बल व दरिद्र बनाए जा रहे हैं।
8. श्रमिकों की इस बढ़ती हुई दरिद्रता व निर्बलता के कारण श्रमिकों में क्रांतिकारी भावना उत्पन्न हो रही है और परस्पर विरोध वर्ग-संघर्ष के रूप में बदल रहा है।
9. चूँकि श्रमिकों की संख्या स्वामियों की संख्या से अधिक है, अतः श्रमिकों द्वारा राज्य को हथियाना और अपना शासन स्थापित करना स्वाभाविक है। इसे उसने 'सर्वहारा वर्ग की तानाशाही' के नाम से घोषित किया है।
10. इन तत्वों का प्रतिरोध नहीं किया जा सकता, इसलिए समाजवाद अपरिहार्य है।

मुझे आशा है, मैंने उन विचारों का सही उल्लेख किया है, जो मार्क्सवादी समाज के मूल आधार हैं।



## मार्क्सवादी सिद्धान्त का अस्तित्व

बुद्ध तथा मार्क्स की विचारधाराओं की आपस में तुलना करने से पहले इस बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि मार्क्सवादी सिद्धान्त के मौलिक संग्रह में से कितने का अस्तित्व रह गया है? इतिहास द्वारा कितनी बातों को असत्य प्रमाणित कर दिया गया है और उसके विरोधियों द्वारा कितनों को निरर्थक सिद्ध कर दिया है।

मार्क्सवादी सिद्धान्त को उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में जिस समय प्रस्तुत किया गया था, उसी समय से इसकी काफी आलोचना होती रही है। इस आलोचना के फलस्वरूप कार्ल मार्क्स द्वारा प्रस्तुत विचारधारा का काफी बड़ा ढाँचा ध्वस्त हो चुका है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मार्क्स का यह दावा कि उसका समाजवाद अपरिहार्य है, पूर्णतया असत्य सिद्ध हो चुका है। सर्वहारा वर्ग की तानाशाही सर्वप्रथम 1917 में, उसकी पुस्तक दास कैपिटल, समाजवाद का सिद्धान्त, के प्रकाशित होने के लगभग सत्तर वर्ष के बाद सिर्फ एक देश में स्थापित हुई थी। यहाँ तक कि साम्यवाद, जो कि सर्वहारा-वर्ग की तानाशाही का दूसरा नाम है, रूस में आया तो यह किसी प्रकार से मानवीय प्रयास के बिना, किसी अपरिहार्य वस्तु के रूप में नहीं आया था। वहाँ एक क्रान्ति हुई थी और इसके रूस में आने से पहले भारी रक्तपात हुआ था तथा अत्याधिक हिंसा के साथ वहाँ सोद्देश्य योजना करनी पड़ी थी। शेष विश्व में अभी भी सर्वहारा वर्ग की तानाशाही के आने की प्रतीक्षा की जा रही है। मार्क्सवाद का कहना है कि समाजवाद अपरिहार्य है। उसके इस सिद्धान्त के झूठे पड़ जाने के अलावा सूचियों में वर्णित अन्य अनेक विचार भी तर्क तथा अनुभव, दोनों के द्वारा ध्वस्त हो गए हैं। अब कोई भी व्यक्ति इतिहास की आर्थिक व्याख्या को ही इतिहास की केवल एकमात्र परिभाषा स्वीकार नहीं करता। इस बात को कोई स्वीकार नहीं करता कि सर्वहारा-वर्ग को उत्तरोत्तर कंगाल बनाया गया है, और यही बात उसके अन्य तर्कों के सम्बन्ध में भी सही है।

कार्ल मार्क्स के मत में जो बात बची रहती है, वह उस बची-खुची आग की तरह है जो मात्रा में तो बहुत थोड़ी, लेकिन बहुत ही महत्वपूर्ण होती है—अग्नि के एक पतंगे व अवशेष के समान है। इस रूप में मेरे विचार में ये चार बातें हैं—

1. दर्शन का कार्य विश्व का पुनर्निर्माण करना है, विश्व की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण देने या समझाने में अपने समय को नष्ट करना नहीं।

2. एक वर्ग का दूसरे वर्ग के साथ स्वार्थ व हित का टकराव व उनमें संघर्ष का होना है।

3. सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व से एक वर्ग को शक्ति प्राप्त होती है और दूसरे वर्ग को शोषण के द्वारा नुकसान पहुँचाया जाता है।

4. समाज की भलाई के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन करके, दुख का निराकरण किया जाए।

## बुद्ध तथा कार्ल मार्क्स के बीच तुलना

जो मार्क्सवादी सिद्धान्त अस्तित्व में है, उससे कुछ बातों को लेकर अब बुद्ध तथा कार्ल मार्क्स के बीच तुलना की जा सकती है।

पहली बात पर बुद्ध तथा कार्ल मार्क्स में पूर्ण सहमति है। उनमें कितनी अधिक सहमति है, इस बात को दर्शाने के लिए मैं नीचे बुद्ध तथा पोत्तपाद नामक ब्राह्मण के बीच हुए वार्तालाप के एक अंश को उद्धृत करता हूँ–

इसके बाद उन्हीं शब्दों में पोत्तपाद ने बुद्ध से निम्नलिखित प्रश्न पूछे–

1. क्या संसार शाश्वत् नहीं है?
2. क्या संसार सीमित है?
3. क्या संसार असीम है?
4. क्या आत्मा वैसी ही है, जैसा शरीर है?
5. क्या आत्मा एक वस्तु है और शरीर दूसरी?
6. क्या सत्य को पा लेने वाला व्यक्ति मृत्यु के बाद फिर जन्म लेता है?
7. क्या वह न तो पुनः जन्म लेता है, न मृत्यु के बाद फिर रहता है?,

और प्रत्येक प्रश्न का बुद्ध ने एक ही उत्तर दिया, जो इस प्रकार था :

11. 'पोत्तपाद यह भी एक विषय है, जिस पर मैंने कोई मत प्रकट नहीं किया है।'
28. 'परंतु बुद्ध ने उस पर कोई मत प्रकट क्यों नहीं किया है?'

(क्योंकि) 'ये प्रश्न उपयोगी नहीं हैं। उनका सम्बन्ध धर्म से नहीं है, यह सही आचरण के लिए भी सहायक नहीं हैं, न अनासक्ति, न लालसा व लोभ से शुद्धिकरण, न शांति, न हृदय की शांति, न वास्तविक ज्ञान, न अंतर्ज्ञान की उच्चतर अवस्था, न निर्वाण में सहायक है। अतएव, यही कारण है कि मैं इसके सम्बन्ध में कोई विचार प्रकट नहीं करता।'



दूसरी बात के सम्बन्ध में मैं नीचे बुद्ध तथा कौशल-नरेश प्रसेनजित के बीच हुए वार्तालाप से एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ–

"इसके अतिरिक्त राजाओं के बीच, कुलीनों के बीच, ब्राह्मणों के बीच, गृहस्थों के बीच, माता तथा पुत्र के बीच, पुत्र तथा पिता के बीच, भाई तथा बहन के बीच, साथियों तथा साथियों के बीच सदा संघर्ष चलता रहा है।"

यद्यपि ये शब्द प्रसेनजित के हैं, परंतु बुद्ध ने इस बात से इंकार नहीं किया कि यह समाज का सही चित्र प्रस्तुत करता है।

जहाँ तक वर्ग-संघर्ष के प्रति बुद्ध के दृष्टिकोण का सम्बन्ध है, अष्टांग-मार्ग का उनका सिद्धांत इस बात को मान्यता देता है कि वर्ग-संघर्ष का अस्तित्व है और यह वर्ग-संघर्ष ही है, जो दुःख व दुर्दशा का कारण होता है।

तीसरे प्रश्न के सम्बन्ध में मैं बुद्ध तथा पोत्तपाद के वार्तालाप में से उक्त यह अंश उद्धत करता हूँ :

"फिर वह क्या है जिसका आप महानुभाव ने निश्चय किया है?"

"पोत्तापाद, मैंने यह स्पष्ट किया है कि दुख तथा कष्ट का अस्तित्व है। वे विद्यमान रहते हैं। मैंने यह समझाया है कि दुःख का मूल व उत्पत्ति क्या है। मैंने यह भी स्पष्ट किया है कि दुःख का अंत क्या है, मैंने यह भी स्पष्ट किया है कि वह कौन-सा तरीका है, जिसके द्वारा व्यक्ति दुःख का अंत कर सकता है।"

30. 'और बुद्ध ने उसके सम्बन्ध में यह कथन क्यों किया?'

"पोत्तापाद' क्योंकि वह प्रश्न उपयोगी है, वह धर्म से संबंधित है, वह सही आचरण, अनासक्ति, लालसा व लोभ से त्राण, हृदय की शांति, वास्तविक ज्ञान, पथ की उच्चतर अवस्था और निर्वाण में सहायक है। इसलिए पोत्तापाद यही कारण है कि कि मैंने उसके सम्बन्ध में कथन किया है।"

यहाँ शब्द यद्यपि भिन्न है, परंतु उनका अर्थ वही है। यदि हम यह समझ लें कि दुःख का कारण शोषण है, तब बुद्ध इस विषय में मार्क्स से दूर नहीं हैं। व्यक्तिगत संपत्ति के प्रश्न के सम्बन्ध में बुद्ध तथा आनंद के बीच वार्तालाप के निम्नलिखित उदाहरण से पर्याप्त सहायता मिलती है। आनंद द्वारा पूछे गए एक प्रश्न का उत्तर देते हुए बुद्ध ने कहा :

"मैंने कहा है कि धन-लालुपता संपत्ति के स्वामित्व के कारण होती है। यह ऐसा किस प्रकार है, इस बात को आनंद, इस प्रकार समझा जा सकता है। जहाँ पर किसी प्रकार की सम्पत्ति व अधिकार नहीं है, वह चाहे किसी

व्यक्ति के द्वारा या किसी भी वस्तु के लिए हो, वहाँ कोई सम्पत्ति या अधिकार न होने के कारण सम्पत्ति की 'समाप्ति या अधिकार की समाप्ति पर क्या कोई धनलोलुप या लालची दिखाई पड़ेगा?'

"नहीं प्रभु।"

"तब आनन्द, स्वामित्व के आधार, उसकी उत्पत्ति, दुराग्रह का प्रश्न ही कहाँ होता?"

31. "मैंने कहा कि दुराग्रह स्वामित्व का मूल है। अब आनन्द वह ऐसा किस प्रकार व क्यों है? इसे इस प्रकार समझना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति में किसी वस्तु के सम्बन्ध में, वहाँ चाहे जो हो, किसी प्रकार की कोई भी आसक्ति नहीं है, तो क्या ऐसा होने पर आसक्ति के अंत होने पर अधिकार या सम्पत्ति का आभास होगा?"

"नहीं होगा, प्रभु।"

चौथी बात के सम्बन्ध में किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। भिक्षु-संघ के नियम इस विषय में सर्वोत्तम प्रमाण हैं। नियमों के अनुसार एक भिक्षु केवल निम्नलिखित आठ वस्तुओं को ही व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में रख सकता है—

1.2.3. प्रतिदिन पहनने के लिए तीन वस्त्र (त्रिचीवर),
4. कमर में बाँधने के लिए एक पेटी (कटिबांधनी),
5. एक भिक्षापात्र,
6. एक उस्तरा (वाति),
7. सुई-धागा, और
8. पानी साफ करने की एक छलनी या छन्ना (अलक्षाधक)।

इसके अलावा एक भिक्षु के लिए सोने या चांदी को प्राप्त करना पूर्णतया निषिद्ध है, क्योंकि इससे यह आशंका होती है कि सोने या चांदी से वह उन आठ वस्तुओं के अलावा, जिनको रखने की उसे अनुमति है, कुछ और वस्तुएँ भी खरीद सकता है।

ये नियम रूस में साम्यवाद में पाए जाने वाले नियमों से बहुत अधिक कठोर हैं।

## साधन

अब हम साधनों पर आते हैं। साम्यवाद, जिसका प्रतिपादन बुद्ध ने किया, उसे कार्यान्वित करने के लिए साधन भी निश्चित थे। इन साधनों को तीन भागों में रखा जा सकता है—



भाग एक—पंचशील का आचरण। बुद्ध ने एक नए सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यह उन समस्याओं की कुंजी है, जो उनके मन में बार-बार उठा करती थी।

नए सिद्धान्त का आधार यह है कि यह सारा संसार कष्टों और दुखों से भरा हुआ है। यह एक ऐसा तथ्य था, जिस पर न केवल ध्यान देना आवश्यक था, बल्कि मुक्ति की किसी भी योजना में इसे प्रथम स्थान देना था। इस तथ्य को मान्य कर बुद्ध ने इसे अपने सिद्धान्त का आधार बनाया।

उनका कहना था कि उक्त सिद्धान्त को यदि उपयोगी होना है, तो कष्ट तथा दुःख का निवारण हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

इस कष्ट तथा दुःख के कारण क्या हो सकते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने यह पाया कि इसके कारण केवल दो हो सकते हैं।

मनुष्य के कष्ट तथा दुःख उसके अपने ही दुराचरण के फलस्वरूप हो सकते हैं। दुःख के इस कारण का निराकरण करने के लिए उन्होंने पंचशील का अनुपालन करने का उपदेश दिया।

पंचशील में निम्नलिखित बातें आती हैं—

1. किसी जीवित वस्तु को न ही नष्ट करना और न ही कष्ट पहुँचाना।
2. चोरी, अर्थात् दूसरे की सम्पत्ति को धोखाधड़ी या हिंसा द्वारा न हथियाना और न उस पर कब्जा करना।
3. झूठ न बोलना।
4. तृष्णा न करना।
5. मादक पदार्थों का सेवन न करना।

बुद्ध का मत है कि संसार में कुछ कष्ट व दुःख मनुष्य के प्रति पक्षपात है। इस पक्षपात का निराकरण किस प्रकार किया जाए? मनुष्य के प्रति मनुष्य के पक्षपात का निराकरण करने के लिए बुद्ध ने 'आर्य : अष्टांग मार्ग' निर्धारित किया। इस 'अष्टांग मार्ग' के तत्व इस प्रकार हैं—

1. सम्यक् दृष्टि, अर्थात् अंधविश्वास से मुक्ति।
2. सम्यक् संकल्प, जो बुद्धिमान तथा उत्साहपूर्ण व्यक्तियों के योग्य होता है।
3. सम्यक् वचन, अर्थात् दयापूर्ण, स्पष्ट तथा सत्य-भाषण।
4. सम्यक् आचरण, अर्थात् शांतिपूर्ण, ईमानदारी तथा शुद्ध आचरण।
5. सम्यक् जीविका, अर्थात् किसी भी जीवधारी को किसी भी प्रकार की क्षति या चोट न पहुँचाना।
6. अन्य सात बातों में सम्यक् परिरक्षण।

7. सम्यक् स्मृति, अर्थात् एक सक्रिय तथा जागरूक मस्तिष्क, और
8. सम्यक् समाधि, अर्थात् जीवन के गंभीर रहस्यों के सम्बन्ध में गंभीर विचार।

इस 'आर्य अष्टांग मार्ग' का उद्देश्य पृथ्वी पर धर्मपरायणता तथा न्यायसंगत राज्य की स्थापना करना तथा उसके द्वारा संसार के दुख तथा विषाद को मिटाना है।

सिद्धान्त का तीसरा अंग 'निब्बान का सिद्धान्त' है। निब्बान का सिद्धान्त आर्य : अष्टांग मार्ग के सिद्धान्त का अभिन्न अंग है। निब्बान के बिना 'अष्टांग मार्ग' की प्राप्ति नहीं हो सकती।

निब्बान का सिद्धान्त यह बताता है कि 'अष्टांग मार्ग' की प्राप्ति के मार्ग में कौन-कौन सी कठिनाइयाँ आती हैं।

इन कठिनाइयों में से मुख्य कठिनाइयाँ दस हैं। बुद्ध ने उनको आसव, बेड़ियाँ या बाधाएँ कहा है।

प्रथम बाधा अहम् का मोह है। जब तक व्यक्ति पूर्णतया अपने अहम् में रहता है, प्रत्येक भड़कीली चीज का पीछा करता है। जिनके विषय में वह व्यर्थ ही यह सोचता है कि वे उसके हृदय की अभिलाषा की तृप्ति व सन्तुष्टि कर देंगी, तब तक उसको आर्य-मार्ग नहीं मिलता। जब उसकी आँखें इस तथ्य को देखकर खुलती हैं कि वह इस असीम व अनन्त का एक बहुत छोटा-सा अंश है, तब वह यह अनुभूति करने लगता है कि उसका व्यक्तिगत अस्तित्व कितना नश्वर है, और तभी वह इस संकीर्ण मार्ग में प्रवेश कर सकता है।

दूसरी बाधा संदेह तथा अनिर्णय की स्थिति है। जब मनुष्य अस्तित्व के महान् रहस्य, व्यक्तित्व की नश्वरता को देखता है तो उसके अपने कार्य में भी सन्देह तथा अनिर्णय की स्थिति की संभावना होती है अमुक कार्य किया जाए, फिर भी मेरा व्यक्तित्व अस्थाई नश्वर है, ऐसी कोई चीज प्रश्न क्यों बन जाती है जो उसे अनिर्णायक, संदेही या निष्क्रिय बना देती है। परन्तु वह चीज जीवन में काम नहीं आएगी। उसे अपने शिक्षक का अनुसरण करने, सत्य को स्वीकार करने तथा संघर्ष की शुरुआत करने का निश्चय कर लेना चाहिए, अन्यथा उसे और आगे कुछ नहीं मिलेगा।

तीसरी बाधा संस्कारों तथा धर्मानुष्ठानों की क्षमता पर निर्भर करता है। किसी भी उत्तम संकल्प से वह चाहे जितना दृढ़ हो, किसी चीज की प्राप्ति उस समय तक नहीं होगी, जब तक मनुष्य कर्मकांड से छुटकारा नहीं पाएगा।



जब तक वह इस विश्वास से मुक्त नहीं होगा कि कोई बाह्य कार्य, पुरोहिती-शक्ति तथा पवित्र धर्मानुष्ठान से उसे हर प्रकार की सहायता मिल सकती है। जब मनुष्य इस बाधा पर काबू पा लेता है, केवल तभी यह कहा जा सकता है कि वह ठीक धारा में आ गया है, और अब देर-सवेर वह विजय प्राप्त कर सकता है।

चौथी बाधा शारीरिक वासनाएँ हैं। पाँचवीं बाधा दूसरे व्यक्तियों के प्रति द्वेष व वैमनस्य की भावना है। छठी भौतिक वस्तुओं से मुक्त भावी जीवन के प्रति इच्छा का दमन है, और सातवीं भौतिकता से मुक्त संसार में भावी जीवन के प्रति इच्छा का होना है। आठवीं बाधा अभिमान है, और नवीं दंभ है। ये वे कमजोरियाँ हैं, जिन पर मनुष्य के लिए विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है और जिनके लिए विशेष रूप से श्रेष्ठ व्यक्ति उत्तरदायी हैं। यह उन लोगों के लिए निंदा की बात है, जो अपने-आप से कम योग्य तथा कम पवित्र हैं।

दसवीं बाधा अज्ञान है। यद्यपि अन्य सब कठिनाइयों व बाधाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है, फिर भी यह बनी ही रहेगी तथा बुद्धिमान तथा अच्छे व्यक्ति के शरीर में कांटे के समान चुभती रहेगी। यह मनुष्य की अंतिम तथा सबसे बड़ी शत्रु है।

'आर्य अष्टांग मार्ग' का अनुसरण करके इन बाधाओं पर विजय प्राप्त करना ही निब्बान है। 'आर्य अष्टांग मार्ग' सिद्धान्त यह बताता है कि मनुष्य के मन की कौन-सी स्थिति व मनोवृत्ति का परिश्रमपूर्वक पोषण करना चाहिए। निब्बान का सिद्धान्त इस प्रलोभन या बाधा के विषय में बताता है, जिस पर यदि व्यक्ति आर्य अष्टांग मार्ग का अनुसरण करना चाहता है, तो उन पर गंभीरतापूर्वक विजय प्राप्त करनी चाहिए। नवीन सिद्धान्त का चौथा भाग 'परिमिता का सिद्धान्त' है। परिमिता का सिद्धान्त एक व्यक्ति के दैनिक जीवन में दस गुणों का आचरण करने के लिए प्रेरित करता है। वे दस गुण इस प्रकार हैं—

(1) पन्न, (2) शील, (3) नेक्खम, (4) दान, (5) वीर्य, (6) खांति (शांति), (7) सच्च, (8) अधित्थान, (9) मेत्त, और (10) उपेक्खा।

पन्न या बुद्धि वह प्रकाश है जो अविद्या, मोह या अज्ञान के अंधकार को हटाता है। पन्न के लिए यह अपेक्षित है कि व्यक्ति अपने से अधिक बुद्धिमान व्यक्ति से पूछकर अपनी सभी शंकाओं का समाधान करं ले। बुद्धिमान लोगों से सम्बन्ध रखे और विभिन्न कलाओं और विज्ञान का अर्जन करे, जो उसकी बुद्धि विकसित होने में सहायक हों। शील नैतिक मनोवृत्ति, अर्थात् बुरा न करने और अच्छा करने की मनोवृत्ति, गलत काम करने पर लज्जित होना है। दंड

के भय से बुरा काम न करना शामिल है। शील का अर्थ है, गलत काम करने का भय। नेक्खम संसार के सुखों का परित्याग है।

दान का अर्थ अपनी सम्पत्ति, रक्त तथा अंग का दान उसके बदले में किसी चीज की आशा किए बिना, दूसरों के हित व भलाई के लिए अपने जीवन तक का भी उत्सर्ग करना है।

वीर्य का अर्थ है, सम्यक् प्रयास। अपना जो कार्य करने का निश्चय कर लिया है, उसे पूरी शक्ति से कभी भी पीछे मुड़कर देखे बिना करना है।

खांति (शांति) का अभिप्राय सहिष्णुता है। इसका सार है कि घृणा का मुकाबला घृणा से नहीं करना चाहिए, क्योंकि घृणा, घृणा से शांत नहीं होती। इसे केवल सहिष्णुता द्वारा ही शाांत किया जाता है।

सच्च (सत्य) सच्चाई है। बुद्ध बनने का आकांक्षी कभी झूठ नहीं बोलता। उसका वचन सत्य होता है। सत्य के अलावा कुछ नहीं होता।

अधित्थान अपने लक्ष्य तक पहुँचने के दृढ़ संकल्प को कहते हैं।

मेत्त (मैत्री) सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति की भावना है, चाहे कोई शत्रु हो या मित्र, पशु हो या मनुष्य, सभी के प्रति होती है।

उपेक्खा अनासक्ति है, जो उदासीनता से भिन्न होती है। यह मन की वह अवस्था है, जिसमें न तो किसी वस्तु के प्रति रुचि होती है, परिणाम से विचलित व अनुतेजित हुए बिना उसकी खोज व प्राप्ति में लगे रहना ही उपेक्खा है।

प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह इन गुणों को अपनी पूर्ण सामर्थ्य के साथ अपने व्यवहार में अपनाए। इन पर आचरण करे। यही कारण कि इन्हें परिमिता (पूर्णता की स्थिति) कहा जाता है। यही वह सिद्धान्त हैं, जिसे बुद्ध ने संसार में दुःख तथा क्लेश की समाप्ति के लिए अपने बोध व ज्ञान के परिणामस्वरूप प्रतिपादित किया है।

स्पष्ट है कि बुद्ध ने जो साधन अपनाए, वे स्वेच्छापूर्वक अनुसरण करके मनुष्य की नैतिक मनोवृत्ति को परिवर्तित करने के लिए थे।

साम्यवादियों द्वारा अपनाए गए साधन भी इसी भांति स्पष्ट, संक्षिप्त तथा स्फूर्तिपूर्ण हैं। ये हैं—(1) हिंसा, और (2) सर्वहारा वर्ग की तानाशाही।

साम्यवादी कहते हैं कि साम्यवाद को स्थापित करने के केवल दो साधन हैं, पहला है हिंसा। वर्तमान व्यवस्था को भंग करने व तोड़ने के लिए इससे कम कोई भी कार्य या योजना पर्याप्त नहीं होगी। दूसरा साधन है, सर्वहारा



वर्ग की तानाशाही। नई व्यवस्था को जारी रखने के लिए उससे कम कोई चीज पर्याप्त नहीं होगी।

स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध तथा कार्ल मार्क्स में क्या समानताएँ हैं तथा क्या विषमताएँ हैं। अंतर व विषमता साधनों के विषय में है। साध्य दोनों में समान हैं।

## साधनों का मूल्यांकन

अब हमें साधनों के मूल्यांकन का विवेचन करना चाहिए। हमें इस बात को देखना चाहिए कि किसके साधन श्रेष्ठ तथा दीर्घकाल तक ठहरने व स्थाायी बने रहने वाले हैं। किंतु दोनों ओर कुछ भ्रांतियाँ हैं। उनको स्पष्ट करना आवश्यक है।

हिंसा को लीजिए। जहाँ तक हिंसा का सम्बन्ध है, हिंसा का नाम सुनते ही उसके विचार से बहुत से लोगों को कंपकंपी आ जाएगी। परंतु यह केवल भावुकता है। हिंसा का पूर्णतया त्याग नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि गैर-साम्यवादी देशों में भी हत्यारे को फाँसी पर लटकाया जाता है। क्या फाँसी पर लटकाना हिंसा नहीं है? गैर-साम्यवादी देश एक-दूसरे के साथ युद्ध करते हैं। युद्ध में लाखों लोग मारे जाते हैं। क्या यह हिंसा नहीं है? यदि एक हत्यारे को इसलिए मारा जा सकता है, क्योंकि उसने एक नागरिक को मारा है, उसकी हत्या की है, यदि एक सिपाही को युद्ध में इसलिए मारा जा सकता है, क्योंकि वह शत्रु-राष्ट्र से सम्बन्धित है, तो यदि सम्पत्ति का स्वामी स्वामित्व के कारण शेष मानव-जाति को दुःख पहुँचाता है, तो उसे क्यों नहीं मारा जा सकता? सम्पत्ति के स्वामी के लिए उसके पक्ष में बचाव करने का कोई कारण नहीं है। व्यक्तिगत सम्पत्ति को परम पावन क्यों माना जाना चाहिए?

बुद्ध हिंसा के विरुद्ध थे। परन्तु वह न्याय के पक्ष में भी थे और जहाँ पर न्याय के लिए बल-प्रयोग अपेक्षित होता है, वहाँ उन्होंने बल-प्रयोग करने की अनुमति दी है। यह बात वैशाली के सेनाध्यक्ष सिन्हा सेनापति के साथ उनके वार्तालाप में भलीभांति सोदाहरण समझाई गई है। इस बात को जानने के बाद कि बुद्ध अहिंसा का प्रचार करते हैं, सिन्हा उनके पास गया और उनसे पूछा—

> "भगवान् अहिंसा का उपदेश देते व प्रचार करते है। क्या भगवान् एक दोषी को दंड से मुक्त करने व स्वतंत्रता देने का उपदेश देते व प्रचार करते हैं? क्या भगवान् यह उपदेश देते हैं कि हमें अपनी पत्नियों,

अपने बच्चों तथा अपनी सम्पत्ति को बचाने के लिए, उनकी रक्षा करने के लिए युद्ध नहीं करना चाहिए? क्या अहिंसा के नाम पर हमें अपराधियों के हाथों कष्ट झेलते रहना चाहिए? क्या तथागत उस समय भी युद्ध का निषेध करते हैं, जब वह सत्य तथा न्याय के हित में हो?"

बुद्ध ने उत्तर दिया—

"मैं जिस बात का प्रचार करता हूँ व उपदेश देता हूँ, आपने उसे गलत ढंग से समझा है। एक अपराधी व दोषी को दंड अवश्य दिया जाना चाहिए। और एक निर्दोष व्यक्ति को मुक्त व स्वतंत्र कर दिया जाना चाहिए। यदि एक दंडाधिकारी एक अपराधी को दंड देता है, तो यह दंडाधिकारी का दोष नहीं है। दंड का कारण अपराधी का दोष व अपराध होता है। जो दंडाधिकारी दंड देता है, वह न्याय का ही पालन कर रहा होता है। उस पर अहिंसा का कलंक नहीं लगता। जो व्यक्ति न्याय तथा सुरक्षा के लिए लड़ता है, उसे अहिंसा का दोषी नहीं बनाया जा सकता। यदि शांति बनाए रखने के सभी साधन असफल हो गए हों, तो हिंसा का उत्तरदायित्व उस व्यक्ति पर आ जाता है, जो युद्ध को शुरू करता है। व्यक्ति को दुष्ट शक्तियों के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं करना चाहिए। यहाँ युद्ध हो सकता है, परन्तु यह स्वार्थ की या स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों की शर्तों के लिए नहीं होना चाहिए।"

इसमें संदेह नहीं कि हिंसा के विरुद्ध अन्य ऐसे आधार भी हैं, जिन पर प्रो. जॉन डिवी द्वारा बल दिया गया है। लोगों का यह तर्क है कि साध्यों की सफलता साधन को उचित सिद्ध करती है, तो यह नैतिक रूप से एक विकृत सिद्धान्त है, उनसे डिवी ने यह ठीक ही पूछा है कि यदि साध्य नहीं, तो फिर साधनों को कौन सी चीज उचित सिद्ध करती है? केवल साध्य ही साधनों को उचित सिद्ध कर सकता व न्यायोचित ठहरा सकता है। बुद्ध कदाचित् इस बात को स्वीकार कर लेते हैं कि यह केवल साध्य ही है, जो साधनों को उचित सिद्ध करता है। इसके अलावा और क्या चीज उचित सिद्ध कर सकती है। और उन्होंने यह कहा होता कि यदि हिंसा को उचित ठहराता है, तो प्रत्यक्ष उपस्थित की पूर्ति साध्य के लिए हिंसा एक उचित साधन है। यदि बल-प्रयोग साध्य को प्राप्त करने का एकमात्र साधन होता, तो वह निश्चय ही संपत्ति के स्वामियों को बल-प्रयोग करने की छूट न देते। इससे पता चलता है कि साध्य के लिए उनके साधन भिन्न थे। प्रो. डिवी ने कहा है कि हिंसा बल-प्रयोग का केवल



एक दूसरा नाम है, और यद्यपि बल का प्रयोग सृजनात्मक उद्देश्यों के लिए किया जाना चाहिए, परंतु शक्ति के रूप में बल-प्रयोग तथा हिंसा के रूप में बल-प्रयोग के बीच अंतर समझना आवश्यक है। एक साध्य की उपलब्धि में अन्य अनेक साध्यों का विनाश शामिल होता है, जो उस साध्य से अभिन्न होते हैं, जिसे नष्ट करने का प्रयास किया जाता है। बल-प्रयोग को इस प्रकार नियमित करना चाहिए कि वह अनिष्टकर साध्य को नष्ट करने की प्रक्रिया में यथासंभव अधिक से अधिक साध्यों की रक्षा कर सके। बुद्ध की अहिंसा उतनी निरपेक्ष नहीं थी, जितनी जैन मत के संस्थापक महावीर की अहिंसा थी। उन्होंने केवल शक्ति के रूप में बल-प्रयोग की अनुमति दी होगी। साम्यवादी हिंसा का प्रतिपादन एक निरपेक्ष सिद्धान्त के रूप में करते हैं। बुद्ध इसके घोर विरोधी थे।

जहाँ तक तानाशाही का सम्बन्ध है, बुद्ध इसका बिलकुल समर्थन नहीं करते। वह लोकतंत्रवादी के रूप में पैदा हुए थे और लोकतंत्रवादी के रूप में ही मरे। उनके समय में चौदह राजतंत्रीय राज्य थे और चार गणराज्य थे। वह शाक्य थे और शाक्यों का राज्य एक गणराज्य था। उन्हें वैशाली से अत्यन्त अनुराग था, जो उनका द्वितीय घर था, क्योंकि वह एक गणराज्य था। उन्होंने महानिर्वाण से पूर्व अपना वर्षावास वैशाली में व्यतीत किया था। अपने वर्षावास के पूरा हो जाने के बाद उन्होंने वैशाली को छोड़कर कहीं और जाने का निश्चय किया, जैसी उनकी आदत थी। कुछ देर जाने के बाद, उन्होंने मुड़कर वैशाली की ओर देखा और फिर आनन्द से कहा, "तथागत वैशाली के अन्तिम बार दर्शन कर रहे हैं।" इससे पता चलता है कि इस गणराज्य के प्रति उनका कितना लगाव व प्रेम था।

वह पूर्णतः समतावादी थे। भिक्षु और स्वयं बुद्ध भी मूलतः जीर्ण-शीर्ण वस्त्र (चीवर) पहनते थे। इस नियम को इसलिए प्रतिपादित किया गया था, ताकि कुलीन वर्ग के लोगों को संघ में शामिल होने से रोका जा सके। बाद में जीवक नामक एक प्रसिद्ध वैद्य ने अनुनय कर बुद्ध को थान से निर्मित वस्त्र को स्वीकार करने के लिए सहमत कर लिया। बुद्ध ने मूल नियम को तुरन्त बदल दिया और उसे सब भिक्षुओं के लिए भी लागू कर दिया।

एक बार बुद्ध की माँ महाप्रजापति गौतमी ने, जो भिक्षुणी संघ में शामिल हो गई थी, सुना कि बुद्ध को सर्दी लग गई है। उन्होंने उनके लिए एक गुलूबंद तैयार करना तुरन्त शुरू कर दिया। उसे पूरा करने के बाद वह उसे बुद्ध के पास ले गईं और उसे पहनने के लिए कहा। परन्तु उन्होंने यह कहकर उसे लेने से इनकार कर दिया कि यदि यह एक उपहार है, तो यह उपहार समूचे

संघ के लिए होना चाहिए, संघ के एक सदस्य के लिए नहीं। उन्होंने बहुत अनुनय-विनय की, परन्तु उन्होंने (बुद्ध ने) उसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया, वह बिलकुल नहीं माने।

भिक्षु संघ का संविधान सबसे अधिक लोकतंत्रात्मक संविधान था। वह इन भिक्षुओं में से केवल एक भिक्षु थे। अधिक से अधिक वह मंत्रिमंडल के सदस्यों के बीच एक प्रधानमंत्री के समान थे। वह तानाशाह कभी नहीं थे। उनकी मृत्यु से पहले उनको दो बार कहा गया कि वह संघ पर नियंत्रण रखने के लिए किसी व्यक्ति को संघ का प्रमुख नियुक्त कर दें। परन्तु हर बार उन्होंने यह कहकर इनकार कर दिया कि 'धम्म' संघ का सर्वोच्च सेनापति है। उन्होंने तानाशाह बनने और तानाशाह नियुक्त करने से इनकार कर दिया।

साधनों का मूल्य क्या है? किसके साधन अन्ततः श्रेष्ठ तथा स्थायी हैं?

क्या साम्यवादी यह कह सकते हैं कि अपने मूल्यवान् साध्य को प्राप्त करने में उन्होंने अन्य मूल्यवान् साध्यों को नष्ट नहीं किया है? उन्होंने निजी व्यक्तिगत सम्पत्ति को नष्ट किया है। यह मानकर कि यह एक मूल्यवान् साध्य है, क्या साम्यवादी यह कह सकते हैं कि उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया में उन्होंने अन्य मूल्यवान् साध्यों को नष्ट नहीं किया है? अपने साध्य व लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने कितने लोगों की हत्या की है? क्या मानव जीवन का कोई मूल्य नहीं है? क्या वे सम्पत्ति को उसके स्वामी का जीवन लिए बिना उससे नहीं ले सकते?

तानाशाही को लीजिए। तानाशाही का साध्य व लक्ष्य क्रांति को स्थायी क्रांति बनाना होता है। यह एक मूल्यवान साध्य है। परन्तु क्या साम्यवादी यह कह सकते हैं कि इस साध्य को उपलब्ध करने के लिए उन्होंने अन्य मूल्यवान् साध्यों को नष्ट नहीं किया है? तानाशाही के बारे में यह कहा गया है कि इसमें स्वतंत्रता और संसदीय सरकार का प्रायः अभाव होता है, अर्थात् दोनों व्याख्याएँ पूर्णतया स्पष्ट नहीं है। स्वतंत्रता का अभाव तो संसदीय संसार में भी होता है, क्योंकि कानून का अभिप्राय होता है, स्वतंत्रता का अभाव। इसी में तानाशाही तथा संसदीय सरकार का अंतर निहित है। संसदीय सरकार में प्रत्येक नागरिक को अपनी स्वतंत्रता पर सरकार द्वारा थोपे गए बंधनों की आलोचना करने का पूरा अधिकार होता है। संसदीय सरकार में आपके कुछ कर्त्तव्य तथा कुछ अधिकार होते हैं। आपका कर्त्तव्य है कि आप कानून का पालन करें और यह अधिकार है कि उसकी आलोचना करें। तानाशाही में आपका केवल कर्त्तव्य



होता है कि आप कानून का पालन करें, परन्तु आपको उसकी आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं होता है।

## किसके साधन अधिक प्रभावोत्पादक व अमोघ हैं

अब हमें इस बात पर विचार करना है कि किसके साधन अधिक टिकाऊ तथा स्थायी है। हमें बल-प्रयोग तथा नैतिक प्रवृत्ति पर आधारित सरकार के बीच चयन करना होगा।

बर्क ने कहा है कि बल-प्रयोग स्थाई साधन नहीं हो सकता। अमरीका के साथ सहमति के सम्बन्ध में उसने यह अविस्मरणीय चेतावनी दी थी—

> "महोदय, पहले मुझे यह बात कहने की अनुमति दीजिए कि एकमात्र बल का प्रयोग केवल अस्थाई होता है। यह कुछ समय के लिए किसी को वश में ला सकता है, परंतु यह उसे पुनः वश में करने की आवश्यकता को समाप्त नहीं करता। और किसी भी ऐसे राष्ट्र पर शासन नहीं किया जा सकता 'जिस पर बार-बार विजय के लिए चढ़ाई करनी पड़े।"
>
> "मेरी अगली आपत्ति इसकी अनिश्चितता के सम्बन्ध में है। बल-प्रयोग का परिणाम हमेशा आतंक नहीं होता और युद्ध-सामग्री विजय नहीं होती। आप साधन-विहीन हैं, क्योंकि समझौता असफल होने पर बल बना रहता है। परन्तु यदि बल-प्रयोग असफल हो जाए, तो समझौते की कोई आशा नहीं रहती। शक्ति तथा सत्ता कभी-कभी दया से भी प्राप्त की जा सकती है। परन्तु अशक्त तथा पराजित हिंसा के द्वारा उसकी कभी भीख नहीं माँगी जा सकती।"
>
> "बल-प्रयोग के बारे में मेरी अगली आपत्ति यह है कि आप अपने लक्ष्य को अपने ही प्रयत्नों से धूल-धूसरित कर देते हैं, जो आप उसे अक्षत बनाने के लिए करते हैं। आपने जिस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पहले संघर्ष किया था, वह आपको पुनः मिल तो जाता है, लेकिन वह इस कारण तुच्छ, गलित, अपशिष्ट और छीनी हुई वस्तु सरीखा होता है।"

बुद्ध ने भिक्षुओं को अपने एक प्रवचन में न्यायसंगत शासन तथा कानून के शासन के बीच अन्तर दर्शाया है। भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—

(2) "बन्धुओं, बहुत समय पहले स्त्रात्र्य (स्ट्रांग टायर) नामक एक प्रभुसत्ता सम्पन्न अधिपति था। वह एक ऐसा राजा था, जो धर्मपरायणता से शासन

करता था। वह पृथ्वी की चारों दिशाओं का स्वामी, विजेता तथा अपनी जनता का रक्षक था। उसके पास दिव्य-चक्र था। वह समुद्र-पर्यन्त पर परमाधिकारपूर्वक रहता था। उसने इस पर विजय प्राप्त की थी, साहस से नहीं, तलवार से नहीं, बल्कि धर्मपरायणता से।''

(3) ''अब बन्धुओं, बहुत वर्षों के बाद, सैकड़ों वर्षों के बाद, मनु के हजार वर्षों बाद, राजा स्त्राञ्य ने किसी व्यक्ति को आदेश दिया और यह कहा कि ''महोदय, आप यह देखें कि दिव्य-चक्र थोड़ा-सा धंस गया है, वह अपने स्थान से नीचे की ओर सरक गया है। इसके विषय में आप मुझे आकर बताइए।''

सैकड़ों वर्षों के बाद वह अपने स्थान से सरक गया। उसे देखने के बाद वह व्यक्ति राजा स्त्राञ्य के पास गया और कहा—''महाराज, यह सच मानिए कि दिव्य चक्र धंस गया है, वह अपने स्थान से सरक गया है।''

बन्धुओं, राजा स्त्राञ्य ने अपने बड़े राजकुमार को बुलाया और उससे इस प्रकार कहा : ''प्रिय पुत्र, देखो, मेरा दिव्य-चक्र थोड़ा-सा धंस गया है। वह अपने स्थान से सरक गया है। मुझे यह बताया गया है कि चक्र को घुमाने वाले राजा का दिव्य-चक्र जब धंस या झुक जाएगा, वह अपने स्थान से सरक जाएगा, तब वह राजा और अधिक समय तक जीवित नहीं होगा। मैंने मानव-जीवन के सब सुख व आनंद भोग लिए हैं, अब ईश्वरीय आनन्द की खोज का समय है। प्रिय पुत्र, जाओ, तुम महासागर से घिरी इस पृथ्वी का कार्यभार संभालो। परन्तु मैं अपने सिर व दाढ़ी का मुंडन कराकर तथा पीले वस्त्र पहनकर घर छोड़कर यहाँ से गृह-विहीन हो जाऊँगा।''

इस प्रकार, बन्धुओं, राजा स्त्राञ्य ने उपयुक्त ढंग से अपने बड़े पुत्र को सिंहासन पर बैठा दिया। अपने सिर तथा दाढ़ी का मुंडन कराया, पीले वस्त्र पहने और वह उसी समय गृह-विहीन हो गया। जब वह राजा सन्यासी होकर चला गया, 'तब उसके सातवें दिन दिव्य-चक्र भी लुप्त हो गया।

(4) जब कोई व्यक्ति नए राजा के पास गया और उसे बताया, ''महाराज, आप यह सच मानिए, दिव्य-चक्र वास्तव में लुप्त हो गया है।''

इसके बाद, बन्धुओं, वह राजा इस बात को सुनकर शोक-संतप्त, दुखी एवं विक्षुब्ध हो गया। वह संन्यासी राजा के पास गया और उसको यह बताया : ''महाराज, यह सही जानिए कि दिव्य-चक्र लुप्त हो गया है।''

''और उस नए अभिसिक्त राजा के यह कहने पर, संन्यासी राजा ने उत्तर दिया—'प्रिय पुत्र, तुम अब इस बात पर दुखी मत हो कि दिव्य-चक्र लुप्त



हो गया है, और न इस बात पर विषाद करो, क्योंकि प्रिय पुत्र, दिव्य-चक्र तुम्हारी कोई पैतृक सम्पत्ति नहीं है। परंतु, प्रिय पुत्र, चक्र-प्रवर्तक बनने का प्रयत्न करो (संसार में सच्चे राजाओं ने अपने लिए जो आदर्श, कर्त्तव्य स्वयं निर्धारित किए हैं, तुम उन आदर्शों के अनुसार कार्य करो)। फिर हो सकता है कि अगर तम चक्र-प्रवर्तक राजा के श्रेष्ठ कर्त्तव्य कर रहे होंगे, तब चंद्र-पर्व के दिन जब तुम स्नान कर सबसे ऊपर वाले छज्जे पर चन्द्र-दर्शन के लिए जाओ, तब दिव्य-चक्र अपने सहस्रों अरो, चक्रनाभि तथा अपने सम्पूर्ण अवयवों के साथ पूर्ण रूप में प्रकट हो जाएगा।''

(5) ''किन्तु महाराज, चक्र-प्रवर्तक राजा का आर्य श्रेष्ठ कर्त्तव्य क्या है?''

''प्रिय पुत्र, वह कर्त्तव्य यह है कि आदर्श, सत्य तथा धर्मपरायणता के नियम को सामने रख उसको सम्मान, सत्कार तथा आदर प्रदान कर, उसके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित कर, श्रद्धापूर्वक स्वयं आदर्श बन, आदर्श को अपना स्वामी मानकर, अपनी जनता, सेना-विद्वान, वर्ग के लोगों, सेवकों तथा आश्रितों, ब्राह्मणों तथा गृहस्थों, नगर तथा ग्रामवासियों, धार्मिक लोगों तथा पशु-पक्षियों को सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए और उनकी अच्छी प्रकार से रखवाली तथा देखरेख करनी चाहिए। तुम्हारे समूचे राज्य में कोई भी काम गलत व अनुचित नहीं होना चाहिए और तुम्हारे राज्य में जो भी व्यक्ति निर्धन है, उसको धन दिया जाए।''

''और, प्रिय पुत्र, तुम्हारे राज्य में धार्मिक व्यक्ति, स्वस्थ व्यक्ति तथा सहिष्णु व्यक्ति, और स्वार्थहीन व्यक्ति और आत्मरक्षा करने वाले व्यक्ति, जब समय-समय पर तुम्हारे पास आएँ और वह पूछें कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है, क्या अपराध है और क्या नहीं, क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, सुख-दुःख के लिए अन्ततोगत्वा कौन सी कार्यप्रणाली सफल होगी? जब वह उक्त प्रकार के प्रश्न करें, तब तुम्हें उनकी बात सुननी चाहिए और तुम्हें उनको बुराई व पाप से रोकना चाहिए और उनको जो अच्छे काम है, उन्हें करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। प्रिय पुत्र, संसार के राजा का यह ही 'आर्य-कर्त्तव्य' है।''

अभिसिक्त राजा ने कहा, ''ऐसा ही होगा।'' उसने आज्ञा का पालन करते हुए राजा के श्रेष्ठ कर्त्तव्य का पालन किया। इस प्रकार आचरण करते हुए वह चंद्र पर्व पर, स्नान कर, अनुष्ठान करने के लिए सबसे ऊपरी छज्जे पर गया, तो दिव्य-चक्र अपने सहस्रों अरों (स्पोक्स), चक्रनाभि तथा अपने सम्पूर्ण अवयवों सहित प्रकट हुआ। उसे देखकर राजा के मन में आया, ''मुझे यह

बताया गया है कि जिस राजा के समक्ष ऐसे अवसर पर यदि दिव्य-चक्र स्वयं पूर्ण रूप में प्रकट होता है, तो वह राजा चक्र-प्रवर्तक प्रभुता-सम्पन्न हो जाता है। मैं भी संसार का सर्व-प्रभुत्व सम्पन्न राजा बन सकता हूँ।"

(6) इसके बाद बन्धुओं, वह राजा अपने स्थान से उठा और उसने अपने एक कंधे से वस्त्र हटाकर अपने बाएँ हाथ में एक घड़ा लिया और अपने दाएँ हाथ से चक्र पर जल छिड़का और यह कहा, "हे दिव्य-चक्र! आगे बढ़ो और विजय प्राप्त करो।"

फिर बन्धुओं, दिव्य-चक्र पूर्व दिशा की ओर बढ़ा और इसके बाद वह चक्र प्रवर्तक राजा उसके पीछे-पीछे, उसके साथ उसकी सेना, अश्व, रथ तथा हाथी और मनुष्य गए। जिस भी स्थान पर, बंधुओं, वह चक्र रुका, उसी स्थान पर वह राजा युद्ध में विजयी हुआ। उस राजा ने तथा उसके साथ उसकी चतुरंगिनी सेना ने वहीं अपना आवास बनाया। इसके बाद उस प्रदेश के अन्य प्रतिद्वन्द्वी राजा उस चक्रवर्ती राजा के पास आए और उससे कहा, "आइए, हे महान् राजन्! आपका स्वागत है, यहाँ सब कुछ आपका है, हमें शिक्षा दीजिए।"

उस चक्रवर्ती राजा एवं योद्धा ने इस प्रकार कहा, "आप किसी प्राणी की हत्या नहीं करेंगे। जो आपको नहीं दिया गया है, आप उसे नहीं लेंगे। आप इच्छाओं के गलत व अनुचित कार्य नहीं करेंगे। आप झूठ नहीं बोलेंगे। आप कोई मादक पेय नहीं पिएँगे। आप अपनी सम्पत्ति व अधिकारों का उसी प्रकार प्रयोग न करें, जैसा कि आप अभ्यस्त हैं।"

(7) इसके बाद, बंधुओं, दिव्य-चक्र पूर्वी महासागर में डुबकी लगाकर बाहर निकला और फिर दक्षिण प्रदेश की ओर बढ़ा (और यहाँ सब कुछ उसी प्रकार, वैसा ही हुआ, जैसा पूर्व प्रदेश में हुआ था)। और उसी भाँति दक्षिणी महासागर में डुबकी लगाकर दिव्य-चक्र पुनः बाहर निकला और पश्चिम प्रदेश की ओर आगे बढ़ा और फिर उत्तरी प्रदेश की ओर बढ़ा और वहाँ भी वही सब बातें हुईं, जो दक्षिणी तथा पश्चिम प्रदेश में हुई थीं।

इसके बाद जब दिव्य-चक्र सम्पूर्ण पृथ्वी पर, महासागर की सीमा तक विजय-पताका फहराता हुआ घूम चुका, तो वह राजसी नगर में वापस आया और रुक गया, ताकि उसे चक्र-प्रवर्तक राजा के आन्तरिक कमरों में प्रवेश-द्वार पर न्याय कक्ष के सामने स्थित करने के सम्बन्ध में विचार किया जा सके, जिससे वह विश्व के अधिपति, प्रभुसत्ता-सम्पन्न राजा के आन्तरिक कमरों के सामने अपने गौरव के साथ चमकता रहे।



(8) और बन्धुओं, एक दूसरा राजा भी चक्र प्रवर्तक हुआ, और तीसरा और चौथा राजा, और पाँचवाँ तथा छठा, और सातवाँ राजा एक विजेता योद्धा बहुत सालों बाद, कई सौ सालों के बाद, हजारों सालों के बाद, किसी व्यक्ति को यह कहकर आदेश देता है कि "यदि आपको यह दिखाई पड़े कि दिव्य-चक्र नीचे धंस गया है, अपने स्थान से खिसक गया है, तो मुझे आकर बताओ।"

"बहुत अच्छा महाराज।" उस मनुष्य ने उत्तर दिया। इस प्रकार बहुत सालों के बाद, कई सौ सालों के बाद, हजारों सालों के बाद एक व्यक्ति ने देखा कि दिव्य-चक्र धंस गया है, वह अपने स्थान से खिसक गया है। ऐसा देखकर वह वीर राजा के पास गया और उसको बताया। फिर उस राजा ने वैसा ही किया, जैसा कि स्त्राज्य ने किया था और राजा के संन्यासी हो जाने के सातवें दिन दिव्य-चक्र लुप्त हो गया।

फिर कोई व्यक्ति राजा के पास गया और उससे जाकर कहा। वह राजा चक्र के लुप्त हो जाने पर दुखी हुआ और शोक से पीड़ित हुआ। परन्तु वह राजा प्रभुसत्ता सम्पन्न, अधिपति के श्रेष्ठ कर्त्तव्य के सम्बन्ध में पूछने के लिए संन्यासी राजा के पास नहीं गया, बल्कि अपने विचार से ही, निशंक होकर जनता पर अपना शासन चलाता रहा। लोगों पर उसका शासन पहले शासन से अलग प्रकार का था। प्रभुसत्ता सम्पन्न राजा के आर्य-श्रेष्ठ कर्त्तव्य का पालन करने वाले, पूर्ववर्ती राजाओं के शासन में वे जिस प्रकार से समृद्धिशाली थे, उस प्रकार इस राजा के शासन में समृद्ध नहीं रहे।

फिर बन्धुओं, मन्त्री तथा दरबारी, वित्त अधिकारी, रक्षक व पहरेदार, द्वारपाल तथा धार्मिक अनुष्ठान करने वाले, सभी व्यक्ति मिलकर राजा के पास आए और उससे इस प्रकार बोले—"हे राजन, आप अपनी जनता पर शासन अपने विचारों के अनुसार करते हैं, जो उस शासन-विधि से भिन्न है, जिस विधि से आपके पूर्ववर्ती राजा, आर्य (श्रेष्ठ) कर्त्तव्य का पालन करते हुए किया करते थे, अतः आपके इस शासन में आपकी जनता समृद्ध नहीं है। अब आपके राज्य में मंत्री तथा दरबारी, वित्त अधिकारी, रक्षा तथा अभिरक्षक एवं धार्मिक अनुष्ठान करने वाले हम दोनों तथा अन्य लोग हैं, जिन्हें प्रभुसत्ता-सम्पन्न राजा के आर्य (श्रेष्ठ) कर्त्तव्य का ज्ञान व जानकारी है। हे राजन, आप उसके सम्बन्ध में हमसे पूछिए। आपके पूछने पर हम उसे आपको बताएँगे।"

(9) इसके बाद, बन्धुओं, उस राजा ने मन्त्रियों तथा उन सभी शेष लोगों को एक साथ बिठाया, उनसे प्रभुसत्ता-सम्पन्न शूरवीर राजा के कर्त्तव्य के सम्बन्ध

में पूछा और उन्होंने उसे बताया। जब उसने उनकी बात सुन ली, तो उसने उनको उचित सावधानी तथा निगरानी व अभिरक्षा प्रदान की, परन्तु उसने दीन-हीन व असहाय लोगों को धन प्रदान नहीं किया और चूँकि यह नहीं किया गया, इसलिए दरिद्रता व निर्धनता व्यापक रूप में फैल गई।

इस प्रकार जब निर्धनता भरपूर व प्रचुर मात्रा में फैल गई, तो किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति की चीज उठा ली, जो उसे दूसरे व्यक्ति ने नहीं दी थी। उसे लोगों ने पकड़ लिया और राजा के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने राजा से कहा, "हे महाराज, इस व्यक्ति ने वह चीज उठा ली है जो उसे नहीं दी गई थी और ऐसा करना चोरी है।"

इस बात को सुनकर राजा ने उस व्यक्ति से इस प्रकार कहा—"क्या यह सच है कि जो चीज तुम्हें किसी व्यक्ति ने नहीं दी, तुमने उसे उठाया है। क्या तुमने वह काम किया है, जिसे लोग चोरी कहते हैं।" "महाराज, यह सच है।" "लेकिन क्यों?" "महाराज, मेरे पास जीवनयापन के लिए कुछ नहीं है," तब राजा ने उस व्यक्ति को धन दिया और उससे कहा, "इस धन से तुम अपने आपको जीवित रखो। अपने माता-पिता, अपने बच्चों तथा पत्नी का पालन-पोषण करो और अपना कारोबार व धंधा चलाओ।" "महाराज, ऐसा ही होगा", उस मनुष्य ने उत्तर दिया।

(10) अब एक दूसरे व्यक्ति ने चोरी करके दूसरे व्यक्ति की वह चीज उठा ली, जो उसे नहीं दी गई थी। उसे लोगों ने पकड़ लिया और राजा के सामने लाए। उन्होंने राजा को बताया, "महाराज इस व्यक्ति को जो चीज नहीं दी गई थी, उसे इसने चोरी से उठा लिया है।" और राजा ने वही बात कही एवं उसी प्रकार किया भी, जिस प्रकार पहले व्यक्ति को कहा था और उसके लिए किया था।

(11) अब बन्धुओं, लोगों ने सुना कि जिन लोगों ने चोरी से उन वस्तुओं को उठाया जो उनको नहीं दी गई थीं, उन लोगों को राजा धन दे रहा है और इस बात को सुनकर उन्होंने सोचा कि हम भी उन चीजों को चोरी से उठा लें, जो हमें नहीं दी गई हैं।

अब फिर किसी व्यक्ति ने वैसा ही किया। उसे उन्होंने पकड़कर राजा के समक्ष उस पर आरोप लगाया। राजा ने पहले की भाँति उससे पूछा, "तुमने चोरी क्यों की?" "क्योंकि महाराज, मैं अपना जीवनयापन नहीं कर सकता।"



तब राजा ने सोचा कि यदि मैं हमेशा ऐसे किसी भी व्यक्ति को धन देता रहूँगा, जिसने चोरी से उस वस्तु को उठा लिया है जो उसे नहीं दी गई थी, तो चोरी में वृद्धि होगी। अब मुझे इसे अन्तिम रूप से रोकना होगा और उसे समुचित दंड देना होगा, इसलिए उसका सिर कटवा देना चाहिए।

अतः उसने अपने व्यक्तियों से कहा, "देखो, इस आदमी की बांहों को इसकी कमर के पीछे एक मजबूत रस्सी से बाँध दो, उसमें गाँठ दे दो, इसके सिर का मुंडन करके गंजा बना दो, इसे सड़कों पर, चौराहों पर ढोल बजाते हुए घुमाओ, इसे दक्षिण-द्वार से बाहर लेकर नगर के दक्षिण की ओर ले जाओ। इस कार्य पर अन्तिम रोक लगा दो। इसे भारी दंड दो, इसका सिर काट दो।" उन लोगों ने उत्तर दिया, "महाराज (ऐसा ही हो)", और उसके आदेश का पालन किया।

(12) बन्धुओं, अब लोगों ने सुना कि जो लोग दूसरों की चीज चोरी से उठाते हैं जो उनको नहीं दी गई हैं, तो उन्हें मृत्युदंड दिया जाता है। इस बात को सुनकर उन्होंने सोचा, अब हमें भी तेज धार वाली तलवारें उनके लिए स्वयं तैयार करनी चाहिए, जिनकी हम वस्तु उठाते हैं, जो हमें नहीं दी गई—वे उसे जो कुछ कहें—हमें उनको रोकना होगा। उनको भारी दंड देना होगा और उनके सिर काटने होंगे।

अतः उन्होंने तेजधार वाली तलवारें तैयार करा लीं और वे ग्राम, कस्बों तथा नगर को लूटने तथा राजमार्ग पर लूटपाट करने के लिए निकल पड़े। जिन लोगों को लूटते थे, उनके सिर काटकर उनको मार डालते थे।

(13) इस प्रकार बन्धुओं, दीन-हीनों को वस्तुएँ व सामान न दिए जाने से निर्धनता फैल गई, निर्धनता से हिंसा बढ़ी और फैली। हिंसा के बढ़ने से जीवन का विनाश सामान्य बात हो गई। हत्याओं की संख्या में वृद्धि होने से उन प्राणियों व व्यक्तियों के जीवन की अवधि भी सामान्यतया समाप्त हो गई।

अब बन्धुओं, कुछ बुजुर्गों में से किसी ने दूसरे व्यक्ति की कोई चीज चुराकर उठा ली, जो उसे नहीं दी गई थी, और उस पर भी अन्य लोगों के समान आरोप लगाया गया और उसे भी राजा के समक्ष लाया गया। राजा ने उससे पूछा कि "क्या यह सच है कि तुमने चोरी की है।" उसने उत्तर दिया, "नहीं, हे राजन, वे जान-बूझकर झूठ बोल रहे हैं।"

(14) इस प्रकार दीन-हीनों व दरिद्रों को समान वस्तुएँ न दिए जाने से निर्धनता फैली...चोरी...हिंसा..हत्या...सामान्य हो गई। फिर किसी व्यक्ति ने

राजा से कहा, "हे राजन, अमुक व्यक्ति ने चोरी से वह वस्तु उठा ली है, जो उसे नहीं दी गई थी, और इस प्रकार उसकी बुराई की।"

(15) और बंधुओं, इसलिए, दीन-हीनों, दरिद्रों को वस्तुएँ व माल न दिए जाने से निर्धनता फैली, उसका विस्तार हुआ, चोरी, हिंसा, हत्या, झूठ, बुराई करना आदि जैसी बातें प्रचुर मात्रा में बढ़ गईं।

(16) झूठ बोलने से जार-कर्म में वृद्धि हुई।

(17) इस प्रकार दीन-हीनों, दरिद्रों को माल व वस्तुएँ न दिए जाने के कारण निर्धनता...चोरी... हिंसा... झूठ... चुगलखोरी... अनैतिकता फैली, उसका विस्तार हुआ।

(18) बन्धुओं उनके बीच तीन चीजों की वृद्धि हुई। ये थीं, कौटम्बिक व्यभिचार, अनियन्त्रित लालच तथा विकृत-लोभ।

इसके बाद, इन तीन चीजों की वृद्धि से माता तथा पिता के प्रति पुत्रोचित श्रद्धा-भक्ति का अभाव, पवित्र व्यक्तियों के प्रति धार्मिक निष्ठा का अभाव व कुल के प्रधान के प्रति आदर व सम्मान का अभाव हो गया।

(19) बंधुओं, एक समय आएगा, जब उन मानवों के वंशजों के जीवन की अवधि दस वर्ष की हो जाएगी। इस जीवन-अवधि वाले मानवों में पांच वर्ष की कुमारियाँ विवाह योग्य आयु की हो जाएँगी। ऐसे मानवों में इस प्रकार की रुचियों (स्वाद), जैसे घी, मक्खन तिल का तेल, चीनी, नमक का लोप हो जाएगा। ऐसे मानवों में कुदरुसा अनाज सर्वोत्तम किस्म का भोजन होगा। इसलिए उस समय कुदरुसा ऐसे किस्म का अनाज होगा, जैसे आजकल चावल (भात) और दाल आदि हैं। ऐसे मानवों के बीच आचार के दस नैतिक आचरणों का बिलकुल लोप हो जाएगा। और कार्य के दस अनैतिक मार्ग अत्यधिक प्रचलित हो जाएँगे। ऐसे मानवों के बीच नैतिकता के लिए कोई स्थान नहीं होगा, उनमें नैतिकता बहुत कम रह जाएगी। ऐसे मानवों के बीच, बंधुओं, जिन लोगों में पुत्र-भाव तथा धर्मिक-निष्ठा का अभाव होगा, और जो अपने कुल के प्रधान के प्रति सम्मान नहीं दिखाएँगे, उन लोगों को उसी तरह की आदर, श्रद्धा तथा प्रशंसा प्रदान की जाएगी, जैसी श्रद्धा तथा प्रशंसा आज पुत्र-भाव वाले, पावन मनोवृत्ति वाले तथा कुल के प्रधान को आदर करने वाले व्यक्तियों को प्रदान की जाती है।

(20) बंधुओं, ऐसे मानवों में माता या माता की बहन (मौसी), माँ की भाभी (मामी), गुरु की पत्नी या पिता की भाभी जैसे (आदरपूर्ण विचार, जो अंतर्विववाह



के लिए बंधन स्वरूप होते हैं) नहीं होंगे। संसार भेड़-बकरियों, मुर्गे-मुर्गियों, सुअरों, कुत्तों और गीदड़ों की तरह स्वच्छंद संभोग में लिप्त हो जाएगा।

बन्धुओं, ऐसे मानवों में अपने बच्चे के प्रति, बच्चे में अपने पिता के प्रति, भाई में भाभी के प्रति, भाई में बहन के प्रति, बहन में भाई के प्रति पारस्परिक शत्रुता, दुर्भावना, वैर-भाव, हत्या करने तक के क्रोधपूर्ण विचार-नियम बन जाएँगे। जैसा कि एक खिलाड़ी उस खेल के प्रति महसूस करता है, जिसे वह देखता है, उसी प्रकार से वे भी महसूस करेंगे।

जब नैतिक-बल असफल हो जाएगा और उसके स्थान पर पाशविक-बल आ जाएगा, तब क्या होगा, संभवतः यहाँ उस स्थिति का सबसे उत्तम चित्र है। बुद्ध यह चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति नैतिक रूप में इतना प्रशिक्षित होना चाहिए कि वह स्वयं ही धर्मपरायणता व न्यायसंगतता का प्रहरी हो जाए।

## राज्य की शिथिलता या समाप्ति

साम्यवादी स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि एक स्थायी तानाशाही के रूप में राज्य का उनका सिद्धान्त उनके राजनीतिक-दर्शन की कमजोरी है। वे इस तर्क का आश्रय लेते हैं कि राज्य अन्ततः समाप्त हो जाएगा। दो ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उन्हें उत्तर देना है। राज्य समाप्त कब होगा? जब वह समाप्त हो जाएगा तो उसके स्थान पर कौन आएगा? प्रथम प्रश्न के उत्तर में कोई निश्चित समय नहीं बता सकते। लोकतंत्र को सुरक्षित रखने के लिए भी तानाशाही अल्पावधि के लिए अच्छी हो सकती है और उसका स्वागत किया जा सकता है। लेकिन तानाशाही अपना काम पूरा कर चुकने के बाद लोकतंत्र के मार्ग में आने वाली सब बाधाओं तथा शिलाओं को हटाने के बाद तो स्वयं समाप्त क्यों नहीं हो जाती? क्या अशोक ने इसका उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया था? उसने कलिंग के विरुद्ध हिंसा को अपनाया। परन्तु उसके बाद उसने हिंसा का पूर्णतया परित्याग कर दिया। यदि आज हमारे विजेता केवल अपने विजितों को ही नहीं, बल्कि स्वयं को भी शस्त्र-विहीन कर लें तो समस्त संसार में शांति हो जाएगी।

साम्यवादियों ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया है। जब राज्य समाप्त हो जाएगा, तो उसके स्थान पर क्या आएगा, इस प्रश्न किसी भी प्रकार कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। यद्यपि यह प्रश्न कि राज्य कब समाप्त होगा, कि अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है क्या इसके बाद अराजकता आएगी ? यदि ऐसा होगा तो साम्यवादी राज्य का निर्माण एक निरर्थक प्रयास है। यदि इसे

बल-प्रयोग के अलावा बनाए नहीं रखा जा सकता, और जब उसे एक साथ बनाए रखने के लिए बल-प्रयोग नहीं किया जाता और यदि इसका परिणाम अराजकता है, तो फिर साम्यवादी राज्य से क्या लाभ है?

बल-प्रयोग को हटाने के बाद जो चीज उसे कायम रख सकती है, वह केवल धर्म ही है। परन्तु साम्यवादियों की दृष्टि में धर्म अभिशाप है। धर्म के प्रति उनमें घृणा इतनी गहरी बैठी है कि वे साम्यवादियों के लिए सहायक धर्मों तथा जो उनके लिए सहायक नहीं हैं, उन धर्मों के बीच भी भेद करेंगे। साम्यवादी ईसाई मत के प्रति अपनी घृणा को बौद्ध धर्म तक ले गए हैं। उन्होंने इन दोनों के बीच अन्तर की जाँच करने का भी कष्ट नहीं किया। साम्यवादियों ने ईसाई मत के विरुद्ध दोहरे आरोप लगाए हैं। ईसाई मत के विरुद्ध उनका प्रथम आरोप यह था कि वह लोगों को परलोक के प्रति सजग तथा इस लोक में दरिद्रता भोगने के लिए बाध्य करता है। जैसा कि बौद्ध धर्म की उक्तियों से देखा जा सकता है, ऐसा आरोप बौद्ध धर्म के विरुद्ध नहीं लगाया जा सकता।

ईसाई धर्म के विरुद्ध साम्यवादियों द्वारा दूसरा जो आरोप लगाया जाता है, उसे बौद्ध धर्म के विरुद्ध नहीं लगाया जा सकता। इस आरोप को संक्षेप में इस प्रकार कहा जाता है कि धर्म जनता के लिए अफ़ीम है। यह आरोप ईसा के पर्वत-प्रवचन (सरमन ऑन दि माउंट) पर आधारित है, जो बाईबिल में मिलता है। यह निर्धन, दरिद्र तथा दुर्बलता के लिए स्वर्ग के द्वार खोलता है। बुद्ध के उपदेश में पर्वत-प्रवचन नहीं मिलता। उनकी शिक्षा व उपदेश धन व सम्पत्ति अर्जित करने से सम्बन्धित है। मैं नीचे उनके द्वारा इस विषय में उनके एक शिष्य अनाथिपिंडक को दिए गए प्रवचन का उल्लेख कर रहा हूँ—

"एक बार अनाथपिंडक उस स्थान पर आया, जहाँ पर बुद्ध ठहरे हुए थे। वहाँ आकर उसने उनको प्रणाम किया और एक ओर आसन ग्रहण किया और उनसे पूछा, "क्या भगवन्, यह बताएँगे कि गृहस्थ के लिए कौन-सी बातें स्वागत योग्य, सुखद तथा स्वीकार्य हैं, परन्तु जिन्हें प्राप्त करना कठिन है?"

बुद्ध ने इस प्रश्न को सुनकर कहा—

"इनमें प्रथम विधिपूर्वक धन अर्जित करना है। दूसरी बात यह देखना है कि आपके सम्बन्धी भी विधिपूर्वक ही धन-सम्पत्ति अर्जित करें। तीसरी बात है, दीर्घकाल तक जीवित रहो और लम्बी आयु प्राप्त करो।

गृहस्थ को इन चार चीजों की प्राप्ति करनी है, जो कि संसार में स्वागत योग्य, सुखकारक तथा स्वीकार्य हैं, परन्तु जिन्हें प्राप्त करना कठिन



है, चार अवस्थाएँ भी हैं जो इनसे पूर्ववर्ती हैं। वे हैं, श्रद्धा, शुद्ध आचरण, स्वतंत्रता और बुद्धि।

स्वतंत्रता ऐसे गृहस्थ का गुण होती है, जो धनलोलुपता के दोष से मुक्त, उदार, दानशील, मुक्तहस्त दान देकर आनन्दित होने वाला और इतना शुद्ध हृदय का हो कि उसे उपहारों का वितरण करने के लिए कहा जा सके।"

**बुद्धिमान कौन है?**

वह जो यह जानता है कि जिस गृहस्थ के मन में लालच, धन-लोलुपता, द्वेष, आलस्य, उनींदापन, निद्रालुता, अन्यमनस्कता तथा संशय है, और जो कार्य करना चाहिए, उसकी उपेक्षा करता है, और ऐसा करने वाला प्रसन्नता तथा सम्मान से वंचित रहता है।

लालच, कृपणता, द्वेष, आलस्य तथा अन्यमनस्कता तथा संशय मन के कलंक हैं। जो गृहस्थ मन के इन कलंकों से छुटकारा पा लेता है, वह महान् बुद्धि, प्रचुर बुद्धि एवं विवेक, स्पष्ट दृष्टि तथा पूर्ण बुद्धि व विवेक प्राप्त कर लेता है।

अतएव, न्यायपूर्ण ढंग से तथा वैध रूप से धन प्राप्त करना, भारी परिश्रम से कमाना, भुजाओं की शक्ति व बल से धन संचित करना तथा भौहों का पसीना बहाकर परिश्रम से प्राप्त करना, एक महान् वरदान है। ऐसा गृहस्थ स्वयं को प्रसन्न तथा आनंदित करता है और हमेशा प्रसन्नता व हर्ष से परिपूर्ण रहता है तथा अपने माता-पिता, पत्नी तथा बच्चों, मालिकों और श्रमिकों, मित्रों तथा सहयोगियों, साथियों को भी प्रसन्नता तथा प्रफुल्लता से परिपूर्ण रखता है।

रूसी विचारक ऐसी स्थिति में, जब बल नहीं रहता, साम्यवाद को बनाए रखने के लिए अंतिम सहायता के रूप में बौद्ध धर्म की ओर ध्यान देते नहीं प्रतीत होते।

रूसी विचारक अपने साम्यवाद पर गर्व करते हैं, परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि बुद्ध ने, जहाँ तक संघ का सम्बन्ध है, उसमें तानाशाही-विहीन साम्यवाद की स्थापना की थी। यह हो सकता है कि वह साम्यवाद बहुत छोटे पैमाने पर था, परन्तु वह तानाशाही-विहीन साम्यवाद था और 'वह एक चमत्कार' था, जिसे करने में लेनिन असफल रहा।

बुद्ध का तरीका अलग था। उनका तरीका मनुष्य के मन को परिवर्तित करना, उसकी प्रवृत्ति व स्वभाव को परिवर्तित करना था, ताकि मनुष्य जो भी

करे, वह उसे स्वेच्छा से बल-प्रयोग या बाध्यता के बिना करे। मनुष्य की चित्तवृत्ति व स्वभाव को परिवर्तित करने का उनका मुख्य साधन उनका धम्म (धर्म) था तथा धम्म के विषय में उनके सतत् उपदेश थे। बुद्ध का तरीका लोगों को उस कार्य को करने के लिए, वे जिसे पसन्द नहीं करते थे, बाध्य करना नहीं था, चाहे वह उनके लिए अच्छा ही हो। उनकी पद्धति मनुष्यों की चित्तवृत्ति व स्वभाव को बदलने की थी, ताकि वे उस कार्य को स्वेच्छा से करें, जिसको वे अन्यथा न करते।

यह दावा किया गया है कि रूस में साम्यवादी तानाशाही के कारण आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ हुई हैं। इससे इनकार नहीं किया जा सकता। इसी कारण मैं यह कहता हूँ कि रूसी तानाशाही सभी पिछड़े देशों के लिए अच्छी व हितकर होगी। परन्तु स्थायी तानाशाही के लिए यह कोई तर्क नहीं है। मानवता के लिए केवल आर्थिक मूल्यों की ही आवश्यकता नहीं होती, उसके लिए आध्यात्मिक मूल्यों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और वह उनकी ओर ध्यान देने की इच्छुक भी नहीं हैं। कार्लाइल ने राजनीतिक अर्थशास्त्र को 'सुअर-दर्शन' की संज्ञा दी है। कार्लाइल का कहना वास्तव में गलत है, क्योंकि मनुष्य की भौतिक सुखों के लिए तो इच्छा होती ही है। परन्तु साम्यवादी दर्शन समान रूप से गलत प्रतीत होता है, क्योंकि उनके दर्शन का उद्देश्य सुअरों को मोटा बनाना प्रतीत होता है, मानो मनुष्य सुअरों जैसे हैं। मनुष्य का विकास भौतिक रूप के साथ-साथ आध्यात्मिक रूप से भी होना चाहिए। समाज का लक्ष्य एक नवीन नींव डालने का रहा है, जिसे फ्रांसीसी-क्रांति द्वारा संक्षेप में तीन शब्दों में—भ्रातृत्व, स्वतंत्रता तथा समानता—कहा गया है। इस नारे के कारण ही फ्रांसीसी-क्रान्ति का स्वागत करते हैं, क्योंकि इसका लक्ष्य समानता उत्पन्न करना है। परन्तु इस बात पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता कि समानता लाने के लिए समाज में भ्रातृत्व या स्वतंत्रता का बलिदान किया जा सकता है। भ्रातृत्व या स्वतंत्रता के बिना समानता का कोई मूल्य व महत्व नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये तीनों तभी विद्यमान रह सकती हैं, जब व्यक्ति बुद्ध के मार्ग का अनुसरण करे। साम्यवादी एक ही चीज दे सकते हैं, सब नहीं।

*(नेपाल की राजधानी, काठमांडू में हुई बुद्धिस्ट कॉन्फ्रेंस में 'बुद्धिज्म एवं कम्युनिज्म' पर भाषण)*

# भगवान् बुद्ध या कार्ल मार्क्स

लेखक डॉ॰बी॰ आर॰ अम्बेडकर

भारतीय बहुजन प्रकाशन
खानपुर नई दिल्ली-११००६२